भाग-1

धीमे विचार

अतुल गवंडे

कुछ नवाचार बड़ी आसानी से फैलते हैं। जिनकी गति धीमी होती है, उन्हें हम कैसे बढ़ाएँ? सुचारू, तकनीकी उपायों के लिए हमारी इच्छा के बावजूद, अक्सर लोगों से बात करने का तरीका ही नवाचार फैलाने और मानक बदलने के लिए ज़्यादा कारगर होता है। कई महत्वपूर्ण नवाचार चिकित्सा के क्षेत्र में उभरे हैं। आइए इस लेख में पढ़ते हैं कुछ ऐसे विचारों के बारे में जो आसानी से फैले और कुछ जिन्हें अपनाने में समय लगा। दो भाग में प्रस्तुत इस लेख के पहले

भाग में इतिहास से कुछ उदाहरणों के ज़रिए और हाल ही में लेखक द्वारा किए गए काम के सहारे इन बातों को समझने की कोशिश करते हैं।

ऐसा क्यों है कि कुछ नवाचार तो तेज़ी से फैलते हैं जबकि अन्य बहुत धीमी गति से? मसलन, सर्जिकल निश्चेतन और एंटीसेप्टिक को लीजिए। दोनों की खोज उन्नीसवीं सदी में हुई थी। निश्चेतन यानी एनेस्थेशिया का पहला सार्वजनिक प्रदर्शन 1846 में किया गया था। एक स्थानीय दन्त चिकित्सक विलियम मॉर्टन ने बोस्टन के सर्जन हेनरी जेकब बिजलो से सम्पर्क किया। दन्त चिकित्सक का दावा था कि उसने एक ऐसी गैस खोज ली है जो मरीज़ को चीरफाड़ के दर्द के प्रति असंवेदी बना सकती है। दावा नाटकीय था। उन दिनों दाँत निकालने जैसी छोटी-सी क्रिया भी दर्दनाक हुआ करती थी। दर्द पर तो काबू पा नहीं सकते थे, इसलिए सर्जन्स फुर्ती का सहारा लेते थे। सहायकों का काम होता था कि चीखते, हाथ-पैर पटकते मरीज़ को दबोचकर रखे, जब तक कि वह दर्द से बेहोश न हो जाए। कई उपाय अपनाए जा चुके थे, मगर उनसे कोई फायदा नहीं हुआ था। बहरहाल, मॉर्टन को अपने दावे के प्रदर्शन का एक मौका देने को बिजलो तैयार हो गए।

निश्चेतन का इतिहास

16 अक्टूबर, 1846 के दिन मैसेचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल में मॉर्टन ने एक युवक को मुँह में इन्हेलर के ज़रिए वह गैस सुँघाई। इस युवक को जबड़े में गठान थी जिस पर चीरा लगाया जाना था। पूरे ऑपरेशन के दौरान मरीज़ अर्ध-चेतन अवस्था में थोड़ा बुदबुदाता रहा था, बस। अगले दिन एक महिला की ऊपरी बाँह से एक बड़ी-सी गठान निकालने का ऑपरेशन किया गया था और इसी गैस की मदद से वह एकदम खामोश और गतिहीन रह पाई थी। जागने पर महिला ने बताया कि उसे कुछ भी महसूस नहीं हुआ था।

चार सप्ताह बाद, 18 नवम्बर के दिन बिजलो ने बोस्टन मेडिकल जर्नल में 'अन्तःश्वसन द्वारा उत्पन्न निश्-चेतना' की खोज का प्रकाशन किया। मॉर्टन इस गैस को लेथियॉन कहते थे मगर उन्होंने इसका संघटन उजागर नहीं किया क्योंकि वे पेटेंट के लिए आवेदन कर चुके थे। अलबत्ता, बिजलो ने रिपोर्ट किया कि इसमें उन्हें ईथर की गन्ध आई थी (ईथर का उपयोग कुछ चिकित्सा नुस्खों में किया जाता था) और यही काफी था। यह विचार चिट्ठियों, बैठकों और पत्रिकाओं के माध्यम से आग की तरह फैला। दिसम्बर के मध्य तक पेरिस और लन्दन में सर्जन मरीज़ों को ईथर सुँघाने लगे थे। फरवरी तक तो युरोप की लगभग

सारी राजधानियों के अस्पतालों में निश्चेतक का इस्तेमाल होने लगा था और जून आते-आते इसका उपयोग सारी दुनिया में शुरू हो गया था।

ऐसा नहीं था कि इसका विरोध नहीं हुआ। कुछ लोगों ने निश्चेतन को 'अनावश्यक ऐयाशी' कहा, पादरियों ने कहा कि प्रसव के दौरान दर्द को कम करने के लिए इसका उपयोग करना सृष्टा की योजना में सेंध मारने जैसा है। उन्नीसवीं सदी के एक स्कॉटिश सर्जन जेम्स मिलर ने निश्चेतन के आविष्कार का इतिहास रिकॉर्ड किया है। बुज़ुर्ग सर्जन्स के प्रतिरोध के बारे में उन्होंने कहा है, "उन्होंने अपने आँख-कान बन्द कर लिए थे और हाथ बाँध लिए थे।... वे अपने मन में तय कर चुके थे कि दर्द एक ज़रूरी बुराई है और इसे सहन करना चाहिए।" इसके बावजूद, निन्दक व बाधक लोग भी 'जल्दी ही समर्थकों में शामिल होते गए।' सात साल के अन्दर अमेरिका और ब्रिटेन के सारे अस्पताल इस नई खोज को अपना चुके थे।

संक्रमण-मुक्त सर्जरी

सर्जरी की दूसरी बड़ी समस्या सेप्सिस यानी संक्रमण की थी। सर्जिकल मरीज़ों की जान लेने वाला अकेला सबसे बड़ा कारण संक्रमण ही था।

1846 में मॉर्टन ने युवक को इन्हेलर के ज़रिए गैस सुँघाई और अर्ध-चेतन अवस्था में उसका ऑपरेशन किया

इसके चलते खुले फ्रेक्चर की मरम्मत या पैर काटने जैसे बड़े ऑपरेशन करवाने वाले आधे मरीज़ जान से हाथ धो बैठते थे। संक्रमणों का प्रकोप इतना ज़्यादा था कि सर्जिकल घावों में मवाद पड़ने की क्रिया को स्वस्थ होने की दिशा में एक ज़रूरी कदम माना जाता था। 1860 के दशक में एडिनबरा के सर्जन जोसेफ लिस्टर ने लुई पाश्चर का एक शोध पत्र पढ़ा था जिसमें इस बात के प्रमाण पेश किए गए थे कि सड़ना और किण्वन सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति की वजह से होते हैं। लिस्टर को यकीन हो गया कि घाव के सड़ने के लिए भी यही प्रक्रिया ज़िम्मेदार है। पाश्चर ने देखा था कि छानने और गर्म करने के अलावा कुछ रसायनों की मदद से भी कीटाणुओं का खात्मा किया जा सकता है। लिस्टर ने यह भी पढ़ा था कि कार्लाइल शहर में मल-जल की बदबू को हटाने के लिए कार्बोलिक अम्ल का उपयोग सफलता-पूर्वक किया गया था। लिस्टर ने तर्क लगाया कि कार्बोलिक अम्ल कीटाणुओं का खात्मा कर देता है और शायद यही क्रिया सर्जरी में भी काम आए।

अगले कुछ सालों में उन्होंने हाथों व घावों की सफाई और ऑपरेशन वाली जगह से सारे कीटाणुओं का सफाया करने में कार्बोलिक अम्ल के उपयोग के तौर-तरीके परिष्कृत किए। परिणामस्वरूप सर्जरी के बाद घाव के पकने (सेप्सिस) और मृत्यु की दर में बहुत कमी आई। आपने सोचा होगा कि जब 1867 में लिस्टर ने सर्वथा नई ज़मीन तोड़ने वाली खोजों की रिपोर्ट्स *दी लैंसेट* में प्रकाशित की होगी, तो उनकी एंटीसेप्टिक विधि उसी तरह तेज़ी से फैली होगी, जैसे निश्चेतन की विधि का प्रसार हुआ था। ऐसा कुछ नहीं हुआ। सर्जन जे.एम. फिनी ने याद करके बताया कि जब लगभग दो दशक बाद वे मैसेचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल में प्रशिक्षु थे, तब तक हाथ धोना लापरवाही से ही किया जाता था। सर्जन अपने औज़ार कार्बोलिक अम्ल में भिगो लेते थे मगर ऑपरेशन करते समय वे वही काले फ्रॉक-कोट पहनते थे जिन पर पिछले ऑपरेशनों के खून के धब्बे और अंगों के टुकड़े चिपके होते थे। यह व्यस्तता का निशान माना जाता था। हर बार नई पट्टियाँ और स्पंज उपयोग करने की बजाय वे पुराने स्पंजों का ही उपयोग करते थे और उन्हें जीवाणुमुक्त भी नहीं बनाते थे। लिस्टर की सिफारिशें आम प्रचलन में आने में अभी एक पीढ़ी का वक्त था। धीरे-धीरे लिस्टर की सिफारिशें रूटीन बनीं और सेप्सिस से निपटने की दिशा में और कदम उठाए गए। इन कदमों ने हमें सेप्सिस-मुक्त कामकाज के आधुनिक मानकों तक पहुँचाया। इसका मतलब यह था कि ऑपरेशन स्थल से कीटाणुओं को पूरी तरह हटा दिया जाए। इसके लिए गर्मी द्वारा जीवाणुरहित बनाए गए उपकरणों का इस्तेमाल करना और सर्जिकल टीम द्वारा निर्जीवीकृत पोशाक

तथा दस्ताने पहनना शामिल था।

कुछ विचारों का प्रसार आसान क्यों?

इलेक्ट्रॉनिक संचार के इस युग में हम उम्मीद करने लगे हैं कि कोई भी महत्वपूर्ण नवाचार तेज़ी से फैल जाएगा। कई सारे नवाचार इस तरह फैलते भी हैं। जैसे इन-विट्रो निषेचन (आईवीएफ या टेस्ट ट्यूब शिशु), जीनोमिक्स तथा स्वयं संचार टेक्नो-लॉजी के मामले में हुआ। मगर एक बड़ी फेहरिस्त ऐसे महत्वपूर्ण नवाचारों की है जो गति नहीं पकड़ सके। सवाल है कि क्यों।

क्या निश्चेतन और एंटीसेप्टिक के प्रसार में अन्तर आर्थिक कारणों से था? दरअसल, दोनों के लिए प्रलोभन तो सही दिशा में था। यदि दर्दरहित सर्जरी मरीज़ों को आकर्षित करती, तो घटी हुई मृत्यु दर का भी यही असर होता। इसके अलावा, सर्जरी के बाद जीवित बचे मरीज़ों से बिल के भुगतान की उम्मीद भी ज़्यादा रहती। शायद जो विचार पुराने विश्वासों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें अपनाना ज़्यादा मुश्किल होता है। उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिकों को कीटाणु सिद्धान्त (जर्म थियरी) शायद उतनी ही गैर-तार्किक लगी होगी जितनी कि डारविन का यह सिद्धान्त कि मनुष्यों का विकास प्रायमेट्स से हुआ है। मगर फिर यह विचार भी तो उतना ही बेतुका लगा होगा कि आप एक गैस सूँघ लीजिए और जीवन की दर्दरहित निलम्बित अवस्था में पहुँच जाइए। निश्चेतन के प्रवर्तकों ने विश्वास से निपटने के

लिस्टर का वो यंत्र जो सर्जरी के स्थान पर लगातार एंटीसेप्टिक पदार्थ की फुहार छोड़ता रहता था

लिए सर्जन्स से कहा कि वे किसी मरीज़ पर ईथर आज़माएँ और असर खुद देखें। यानी टेस्ट ड्राइव का तरीका अपनाया। मगर जब लिस्टर ने यह रणनीति अपनाई तो ज़्यादा सफलता नहीं मिली।

एक समस्या तकनीकी जटिलता की भी हो सकती है। लिस्टर की तकनीक को 'आज़माने' के लिए आपको कई बारीकियों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना पड़ेगा। सर्जन्स को अपने हाथों को, औज़ारों को और टाँके लगाने के धागे तक को एंटीसेप्टिक घोल में भिगोना होगा। लिस्टर ने एक ऐसा यंत्र भी बनाया था जो सर्जरी के स्थान पर लगातार एंटीसेप्टिक पदार्थ की फुहार छोड़ता रहता था।

मगर निश्चेतन भी तो कोई आसान नहीं था। ईथर प्राप्त करना और इन्हेलर बनाना मुश्किल साबित हो सकता था। आपको यह भी सुनिश्चित करना होता था कि इस यंत्र से गैस की सही मात्रा मरीज़ को मिले। इस यंत्र के साथ लगातार जोड़-तोड़ करनी होती थी। फिर भी अधिकांश सर्जन्स इस पर टिके रहे - या क्लोरोफॉर्म का उपयोग करने लगे। क्लोरोफॉर्म और भी शक्तिशाली निश्चेतक साबित हुआ हालाँकि इसने नई समस्याएँ खड़ी कीं (गलत खुराक मरीज़ की जान ले लेती थी)। इन दिक्कतों से सामना हुआ तो सर्जन्स ने इन निश्चेतकों को छोड़ा नहीं बल्कि उन्होंने चिकित्सा विज्ञान की एक पूरी नई शाखा खड़ी कर ली - निश्चेतन विज्ञान (एनेस्थेशियोलॉजी)।

तो प्रमुख फर्क क्या रहे? प्रथम, पहली तकनीक एक तात्कालिक समस्या (दर्द) से निपटती थी जबकि दूसरी तकनीक एक अदृश्य समस्या (कीटाणु) का सामना करती थी जिसके असर ऑपरेशन के कई दिनों बाद प्रकट होंगे। दूसरा, हालाँकि दोनों ही मरीज़ों के जीवन को बेहतर बनाती थीं, मगर सिर्फ एक ही डॉक्टरों का जीवन बेहतर बनाती थी। निश्चेतन ने सर्जरी को एक चीखते-चिल्लाते मरीज़ पर आपाधापी में किए जाने वाले एक निर्मम आक्रमण से बदलकर एक शान्त और सोच-विचारकर की जाने वाली प्रक्रिया बना दिया। दूसरी ओर, लिस्टर तकनीक में ऑपरेशन करने वाले को कार्बोलिक अम्ल की फुहार में काम करना पड़ता था। बहुत कम सान्द्रता होने पर भी यह सर्जन के हाथों में जलन पैदा करता था। आप समझ ही सकते हैं कि लिस्टर का अभियान क्यों सफल नहीं हुआ होगा।

यह पैटर्न कई महत्वपूर्ण मगर बाधित विचारों के सन्दर्भ में नज़र आता है। ये विचार किसी ऐसी समस्या पर हमला करते हैं जो बहुत बड़ी है मगर अधिकांश लोगों को नज़र नहीं आती। दूसरी बात है कि इन विचारों को कार्यरूप देना सीधे-सीधे दर्दनाक न भी हो, श्रमसाध्य ज़रूर होता है। गर्म होती जलवायु के कारण हो रहा विश्वव्यापी विनाश, हमारे अति-शर्करा

सुरक्षित प्रसवः आजकल काफी संख्या में महिलाएँ अस्पतालों में प्रसव करवा रही हैं।

आधारित आधुनिक भोजन, छात्रों को दिए गए तीस खरब डॉलर के कर्ज़ - ये चीज़ें हर दिन धीरे-धीरे बिगड़ती जाती हैं। इनके खिलाफ जो कार्बोलिक अम्ल-नुमा उपचार हैं वे कहीं नहीं पहुँचते क्योंकि उनके लिए किसी-न-किसी तरह के निजी त्याग की ज़रूरत होती है।

प्रसव के दौरान मृत्यु की समस्या

प्रसव के दौरान मृत्यु की विश्व व्यापी समस्या एक उदाहरण है। हर साल, तीन लाख माँएँ और 60 लाख बच्चे जन्म के समय मर जाते हैं। इनमें से अधिकांश गरीब देशों में मरते हैं। अधिकांश मौतें प्रसव के दौरान या उसके कुछ ही समय बाद घटने वाली घटनाओं के कारण होती हैं। किसी माँ को रक्त स्राव हो सकता है, उसे या उसके बच्चे को संक्रमण हो सकता है। कई बच्चे बगैर मदद के अपनी पहली साँस भी नहीं ले पाते हैं। और नवजात शिशु, खास तौर से कम वज़न वाले शिशु जन्म के बाद सामान्य तापमान हासिल नहीं कर पाते। ऐसे मामलों में आसान जीवनरक्षक उपाय दशकों से पता हैं। बात इतनी-सी है कि इनका प्रसार नहीं हुआ है।

कई सारे समाधान ऐसे नहीं हैं कि आप उन्हें घर पर आज़मा सकें। यह एक समस्या है। अलबत्ता, आज दुनिया भर में बढ़ते क्रम में महिलाएँ अस्पतालों में प्रसव करवा रही हैं। भारत में एक सरकारी कार्यक्रम के तहत माँओं को अस्पताल में प्रसव करवाने पर चौदह सौ रुपए दिए जाते हैं - अधिकांश भारतीय लोग महीना इससे कम पैसे पर गुज़ार देते हैं। आजकल कई इलाकों में अधिकांश प्रसव संस्थाओं में होते

हैं। भारत में मृत्यु दर में कमी आई है मगर आज भी हमारे जैसे उच्च आमदनी वाले देशों के मुकाबले दस गुना ज़्यादा है।

कुछ समय पहले मैं उत्तर भारत के कुछ सामुदायिक अस्पतालों में गया था। वहाँ मात्र एक-तिहाई माँओं को ही रक्तस्राव की रोकथाम के लिए दी जाने वाली दवाइयाँ मिली थीं। दस प्रतिशत से भी कम नवजात शिशुओं को पर्याप्त उष्णता प्रदान की गई थी और मात्र 4 प्रतिशत प्रसव-सहायक योनि परीक्षण या प्रसव से पहले अपने हाथ धोते थे। औसत प्रसव के दौरान 29 बुनियादी तौर-तरीकों की सिफारिश की जाती है। एक औसत प्रसव के दौरान चिकित्सक इनमें से करीब 10 का ही पालन करते थे।

यह इक्कीसवीं सदी की शुरुआत है और हम आज भी यही समझने की कोशिश कर रहे हैं कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के विचार कैसे जड़ें जमाएँ। प्रसव के सुरक्षित तौर-तरीकों का प्रसार करने के मकसद से मैंने और मेरे कई साथियों ने भारत सरकार, विश्व स्वास्थ्य संगठन, गेट्स फाउंडेशन और पॉपुलेशन सर्विस इंटरनेशनल के साथ जुड़कर बेटर-बर्थ प्रोजेक्ट विकसित किया है। हम भारत के एक सबसे गरीब राज्य उत्तर प्रदेश में काम कर रहे हैं। जनवरी की एक दोपहरी में हमारी टीम राज्य की राजधानी लखनऊ से दो घण्टे की यात्रा करके एक ग्रामीण अस्पताल पहुँची। जहाँ लखनऊ में खस्ताहाल दुकानें और चिल्लपों मचाती कारें थीं, वहीं यह ग्रामीण अस्पताल हरे-भरे खेतों और कच्ची झोंपड़ियों के बीच स्थित था। हालाँकि सूरज सिर पर था और आसमान साफ था, मगर तापमान लगभग हिमांक पर था। अस्पताल एक-मंज़िली कांक्रीट की पीली पुती इमारत में था (अपने अनुसन्धान अनुबन्ध के मुताबिक मैं इसका नाम नहीं बता सकता)। प्रवेश द्वार एक कच्ची सड़क पर खुलता था जहाँ मोटरसायकिलों की कतारें लगी थीं। मोटरसायकिल ही यहाँ लम्बी दूरी के यातायात का मुख्य साधन है। यदि एम्बुलेंस या ऑटो रिक्शा न मिले, तो प्रसव पीड़ा वाली महिला बाइक की पिछली सीट पर सवार हो जाती है।

यह अस्पताल प्रति वर्ष 3000 प्रसव करवाता है। भारत में तो यह औसत आँकड़ा है मगर अमेरिका में ऐसा अस्पताल सर्वोच्च 20 प्रतिशत में शुमार होगा। मगर इस अस्पताल में ऐसी ज़्यादा सुविधाएँ नहीं थीं जिन्हें आधुनिक कहा जा सके। मैं प्रभारी चिकित्सक से मिला। वह एक सक्षम व स्मार्ट इंटर्न था जिसकी पढ़ाई राजधानी में हुई थी। उम्र तीस से अधिक रही होगी। दाढ़ी-मूँछें सफाचट, बाल छोटे-छोटे कटे हुए, स्वेटर और ट्रेक शूज़ पहने हुए वह हमेशा थोड़ा मुस्कुराता रहता था। उसने मुझे थोड़ा क्षमायाचना के भाव में बताया कि स्टाफ में किसी के पास रक्त परीक्षण, रक्ताधान या आपातकालीन प्रसव करवाने (जैसे

सीज़ेरियन ऑपरेशन) का हुनर नहीं है। दिन में बिजली नहीं रहती है। कमरों को गर्म करने की कोई व्यवस्था नहीं थी जबकि उस दिन तापमान 3-4 डिग्री सेल्सियस रहा होगा। वहाँ एयर-कंडीशनिंग की व्यवस्था भी नहीं थी जबकि गर्मियों में तापमान आम तौर पर 37 डिग्री तक पहुँच जाता है। पूरे अस्पताल के लिए मात्र दो ब्लड प्रेशर पट्टे थे। मेरे मोहल्ले की प्राथमिक शाला में नर्स का कमरा इससे बेहतर सुविधाओं से लैस था।

अस्पताल में कर्मचारियों की भी बहुत कमी थी। डॉक्टर ने बताया कि आधे पद तो रिक्त हैं। करीब 5 लाख लोगों की स्थानीय आबादी को प्रसव सम्बन्धी मदद देने के लिए अस्पताल में मात्र दो नर्सें और एक प्रसव विशेषज्ञ थी। प्रसव विशेषज्ञ डॉक्टर की पत्नी थी। नर्सों को प्रसव का छः माह का प्रशिक्षण मिला था और वे ही साल भर अदला-बदली करके लगभग सारे प्रसव करवाती थीं। प्रसव विशेषज्ञ बाह्य रोगियों को देखती थी और रात या दिन, कभी भी ज़रूरत होने पर पेचीदा प्रसव में मदद करती थी। छुट्टी के दिन या बीमार होने पर दोनों नर्सें एक-दूसरे का काम कर देती थीं मगर यदि दोनों में से कोई भी उपलब्ध न हो, तो महिला को या तो मीलों दूर स्थित किसी दूसरे अस्पताल भेज दिया जाता या किसी अप्रशिक्षित सहायक को तैनात कर दिया जाता।

आपको शायद हैरानी होगी कि किसी गाँव में अपने घर पर प्रसव करवाने की बजाय ऐसे स्थान पर प्रसव करवाना बेहतर होता है मगर अध्ययन सचमुच बताते हैं कि जब महिलाएँ इन संस्थाओं में प्रसव करवाती हैं तो जीवित रहने की दर काफी बढ़ जाती है। भारत में मैं जिन कर्मचारियों से मिला उनके पास ज़बर्दस्त अनुभव था। यहाँ एकदम युवा नर्सें भी हज़ार से ज़्यादा प्रसव करवा चुकी होती हैं। उन्होंने अनगिनत समस्याएँ देखी हैं और उनसे निपटना सीखा है - फटी हुई आँवल, शिशु की गर्दन पर लिपटी हुई गर्भनाल, फँसा हुआ कन्धा वगैरह। ऐसे स्थानों को चलाए रखने के लिए जिस ढंग की बहादुरी की ज़रूरत रोज़ाना होती है उसे देखते हुए यह पूछना बेवकूफी और अशिष्टता लगेगी कि ये कर्मचारी अपने काम को कैसे बेहतर बना सकते हैं।

फिर हम कुछ देर तक वॉर्डों में रुके रहे। प्रसव कक्ष में हाल ही में एक लड़के का जन्म हुआ था। वह और उसकी माँ एक खटिया पर कम्बल ओढ़े पड़े थे, आराम कर रहे थे। कमरा एकदम ठण्डा था। मुझे तो अपनी उँगलियों का ही पता नहीं चल रहा था। मैंने कल्पना करने की कोशिश की कि उस लड़के को कैसा लग रहा होगा। नवजात शिशुओं के शरीर की सतह का क्षेत्रफल अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता है और उनके शरीर से ऊष्मा बहुत जल्दी निकल जाती है। गर्म मौसम में भी हायपोथर्मिया (यानी

शरीर का तापमान गिरना) आम बात है। और हायपोथर्मिया नवजात को कमज़ोर बनाता है और उसकी प्रतिक्रियाएँ धीमी पड़ जाती हैं। वह स्तनपान कम कर पाता है और संक्रमण के प्रति दुर्बल हो जाता है। मैंने देखा कि लड़के को माँ से अलग लपेटकर रखा गया था। काफी सबूत दर्शाते हैं कि बच्चे को माँ के सीने या पेट से सटाकर रखना बेहतर होता है ताकि माँ का शरीर बच्चे के तापमान का नियमन कर सके जब तक कि बच्चा स्वयं सक्षम न हो जाए। छोटे या समयपूर्व जन्मे बच्चे के मामले में कंगारू देखभाल (यही नाम है इसका) मत्यु दर को एक-तिहाई तक कम कर देती है।

कंगारू देखभाल

तो नर्स ने दोनों को एक ही कम्बल में क्यों नहीं लपेटा था? टिमटिमाती आँखों वाली तीसेक साल की वह नर्स कत्थई बुनी हुई टोपी और सलवार कमीज़ के ऊपर ऊनी स्वेटर पहने थी और काफी हुनरमन्द और आश्वस्त थी। यहाँ संसाधनों का कोई मुद्दा नहीं था - कंगारू देखभाल में कोई खर्चा नहीं लगता। क्या उसने इसके बारे में सुना था? हाँ, ज़रूर सुना था। वह जिस कुशल-प्रसव-सहायक कक्षा में गई थी वहाँ सिखाया गया था। क्या वह इसके बारे में भूल गई थी? नहीं, दरअसल उसने बच्चे को माँ से सटाकर रखने की पेशकश की थी और मुझे बताया कि यह बात उसने

कंगारू देखभाल

रिकॉर्ड में लिखी भी थी।

उसने समझाया, "माँ नहीं चाहती थी। कह रही थी कि उसका बदन बहुत ठण्डा है।"

नर्स को लग रहा था कि पता नहीं क्यों मैं इसे इतना बड़ा मुद्दा बना रहा हूँ। बच्चा मज़े में तो है, नहीं? और वाकई बच्चा मज़े में था। वह सुकून से सो रहा था - देखने से लगता था कि एक अच्छी तरह लपेटी गई मूंगफली है जिसका गेहुँआ चेहरा है और मुँह थोड़ा खुला हुआ है।

परन्तु क्या उसका तापमान नापा गया था? नहीं, नहीं नापा था। नर्स

ने बताया कि वह नापने ही वाली थी। हमारे आने से उसका रूटीन बिगड़ गया था। मान लीजिए वह तापमान नापती और कम आता। तब क्या वह कुछ अलग तरह से काम करती? क्या वह माँ से कहती कि वह बच्चे को अपने सीने से सटाकर रखे? नर्स के व्यवहार की हर बात - जितने घण्टे वह काम करती है, जिस तरह की परिस्थितियों से जूझती है, अपनी क्षमताओं में जितना सन्तोष रखती है - से झलकता है कि वह परवाह करती है। मगर लिस्टर के उन कीटाणुओं की तरह हायपोथर्मिया नर्स को नज़र नहीं आता है। हमारे दिमाग में एक बच्चे की तस्वीर होती है जो नीला पड़ गया है और हमारी आखों के सामने तड़प रहा है। हायपोथर्मिया ऐसा नहीं दिखता। हायपोथर्मिया का मतलब इतना ही है कि बच्चे का तापमान बस चन्द डिग्री कम है, वह थोड़ा सुस्त है, स्तनपान में बहुत धीमा है। बच्चे का वज़न कम होना, पेशाब कम बनना जैसे लक्षण प्रकट होने में थोड़ा वक्त लगेगा। निमोनिया या रक्त संचार का संक्रमण भी थोड़ी देर बाद ही होगा। मगर वह सब होने से बहुत पहले - आम तौर पर प्रसव के अगले दिन सुबह या शायद उसी रात माँ लड़खड़ाते कदमों से ऑटो रिक्शा में अपने पति की बगल में बैठेगी, बच्चे को कसकर थामकर उबड़-खाबड़ सड़कों पर हिचकोले खाती हुई घर पहुँच जाएगी। नर्स के नज़रिए से देखें तो उसने एक और जीवन को दुनिया में लाने में मदद की है। यदि बाद में 4 प्रतिशत नवजात शिशु घर पर मर जाते हैं, तो इसका इस बात से क्या सम्बन्ध है कि उसने माँ और बच्चे को कम्बल में कैसे लपेटा था? या उसने दस्ताने पहनने से पहले हाथ धोए थे या नहीं? या जिस ब्लेड से उसने गर्भनाल काटी थी वह जीवाणुमुक्त थी या नहीं?

इन समस्याओं के समाधान के लिए हम तकनीकी उपायों पर लट्टू हैं - मसलन शिशु ऊष्मक (बेबी वॉर्मर्स)। आपको देहाती अस्पताल में हाइ-टेक इनक्यूबेटर मिल जाएगा जो बेकार पड़ा होगा क्योंकि शायद कोई पुर्ज़ा नहीं मिला या वहाँ बिजली नहीं है। वैसे हाल के वर्षों में इंजीनियरों ने खास तौर से विकासशील देशों के लिए डिज़ाइनें तैयार की हैं। एक नवजात विशेषज्ञ और बेटर-बर्थ प्रोजेक्ट के मुखिया डॉ. स्टीवन रिंगर एक ऐसे दल के सलाहकार थे जिसने एक सस्ता, नवाचारी इनक्यूबेटर बनाया है। यह पुरस्कृत इनक्यूबेटर कार के पुराने पुर्ज़ों से बनाया जा सकता है जो कम आमदनी वाली परिस्थितियों में आसानी से उपलब्ध होते हैं और इनकी मरम्मत भी आसान होती है। फिर भी ये चल नहीं पाए हैं। रिंगर मायूस हैं कि यह उपकरण संग्रहालयों में ज़्यादा और प्रसव कक्ष में कम हैं।

विश्व स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं की अधिकांश दिक्कतों के समान सबसे

बड़ी दिक्कत टेक्नोलॉजी की अनुपलब्धता नहीं है। हमारे पास सर्वोत्तम ऊष्मक तकनीक यानी माँ की त्वचा तो है ही। मगर उच्च आमदनी वाले देशों में हम इसका नियमित रूप से उपयोग नहीं करते। रिंगर के मुताबिक संयुक्त राज्य अमेरिका में जो नवजात बच्चे सघन देखभाल की ज़रूरत के लिए लाए जाते हैं, उनमें से आधे से ज़्यादा हायपोथर्मिक होते हैं। हायपोथर्मिया की रोकथाम अनाकर्षक कार्यों का सटीक उदाहरण है। इसके लिए कठिन प्रयासों की दरकार होती है जबकि कोई तात्कालिक प्रतिफल नहीं मिलता।

यदि अस्पतालों और प्रसव सहायकों को सुरक्षित प्रसव के मात्र कुछेक काम करने के लिए तैयार किया जा सके तो लाखों जीवन बचाए जा सकते हैं। मगर यह करें कैसे?

(...जारी)

अतुल गवंडेः सर्जन, लेखक और लोक स्वास्थ्य में शोध करते हैं। अमेरिका के बॉस्टन शहर में ब्रिघम एण्ड विमेन्स हॉस्पिटल में सामान्य और अन्तःस्त्रावी सर्जरी का काम करते हैं। हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ और हार्वर्ड मेडिकल स्कूल में प्रोफेसर भी हैं। वे एक गैर-सरकारी, लाभ-निरपेक्ष संस्था के ज़रिए दुनिया भर में ऐसे सिस्टम और तकनीकों को क्रियान्वित करने की कोशिश में लगे हैं जिनसे सर्जरी के कारण मौत को कम किया जा सकता है। 1998 से 'न्यू यॉर्कर' पत्रिका के लिए स्वास्थ्य और चिकित्सा पर लिखते आए हैं और तीन किताबों के लेखक भी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख 29 जुलाई, 2013 के 'न्यू यॉर्कर' पत्रिका में लेखक के ऐनल्स ऑफ मेडिसिन कॉलम से साभार।